# अनुक्रमणिका

एको साधै सब सधे
भगवद् लीलायें
साधारण जिज्ञासायें और उनके समाधान
ब्रह्म विचार
आत्म विचार
श्रेष्ठता कैसे सिद्ध हुई।
अगस्त मास का राशिफल
भक्त बाबा फरीद के श्लोक
तीर्थ यात्रा : तुंगनाथ
श्रीकृष्ण जन्म
भगवान के संदेश का प्रचार करें
तिथि विचार

धर्मप्रचार में आप भी हमारे सहयोगी बन सकते हैं। अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें :

Mahesh Batish, Vishavkarma Nagar, Main Street,
Mandi Gobindgarh-147301 (Punjab) India Cell : 0091 98881 71331
E-mail : maheshbatish@rediffmail.com, maheshbatish@yahoo.com
Visit our Home page at : www.geocities.com/dharamvichar

# एको साधै सब सधे

संसार में यदि हम मन को नियन्त्रण में कर लें तो जीवन बहुत सरल हो जाता है। मन क्या है? मन हमारे शरीर में स्थित किसी तरह का अंग नहीं हैं, न ही यह कोई ऐसी वस्तु है जो हमारे शरीर में घूमती रहती है। मन हमारे विचारों, बुद्धि, ज्ञान, अनुभव का मिला–जुला रुप है। अस्थिरता मन का स्वभाव है। मन कभी स्थिर नहीं हो सकता। जैसे परिस्थितियां कभी एक जैसी नहीं होती, वे बदलती रहती हैं, वैसे ही परिस्थितियों के साथ मन भी बदलता रहता है। मन का इस तरह बदलना स्वाभाविक भी है। अगर मन का इस तरह बदलना स्वाभाविक है तो मन की स्थिरता से क्या अर्थ हुआ? अगर मन बदलता ही रहेगा तो यह स्थिर कब होगा? फिर यह कहने का कोई अर्थ नहीं हुआ कि मन को नियन्त्रण में रखो।

हमें जीवन में बहुत समस्यायों का सामना करना पड़ता है। दुनिया में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं जिसे कभी किसी समस्या का सामना न करना पड़ा हो। राजा–महाराजा मंत्रियों को किसलिए रखते थे? वे उनसे अपनी समस्यायें हल करवाते थे। हम अपना कोई सहायक क्यों रखते हैं? क्योंकि हमारी कोई समस्या होती है और हम उसे अकेले हल नहीं कर सकते। जब कोई समस्या आती है तो मन या तो उसके समाधान की खोज में लग जाता है या फिर उसे अनदेखा कर देता है। हम बात कर रहे हैं मन को नियंत्रण में रखने की। जब हमें कोई

समस्या आये तथा उसका हल आवश्यक हो तो हमारा मन हमारे नियंत्रण में होना चाहिए। ऐसा न हो कि मन कहीं और भटकता रहे तथा समस्या का हल न कर पाये। इसलिए मन में सबसे पहले दृढ़ता का विकास करना जरुरी है। आप जो कुछ कर रहे हैं, जहां बैठे हैं, जहां खड़े हैं वहां पर आप अपने मन को लगा सको, यह योग्यता आपमें अवश्य होनी चाहिए। मन को नियंत्रित करने की कई विधियां होती हैं। एक विधि के बारे में कहानी द्वारा बात करते हैं।

गाँव में लोग भैंस को दुहने का प्रयास कर रहे थे। लेकिन भैंस थी कि किसी को पास तक आने नहीं दे रही थी। जो कोई भैंस के पास जाने का प्रयास करता भैंस उसे लात मार देती। काफी लोगों ने प्रयास किया कि किसी तरह भैंस को दुह लिया जाये लेकिन कोई सफल नहीं हुआ। कुछ समय बाद उस गाँव से होकर एक संत गुजरे। उन्होंने देखा कि इतने लोग भैंस के आस–पास एकत्र हुये हैं, देखना चाहिए क्या माजरा है। उन्होंने आकर वास्तुस्थिति देखी तथा लोगों से कहा कि मैं इस भैंस को ठीक कर दूँगा। संत ने देखा कि भैंस किसी को भी पास जाने पर लात मारती है। संत ने एक लम्बा डंडा मंगवाया। दूर बैठकर उन्होंने भैंस की लात को उस डंडे से स्पर्श किया, भैंस ने तुरन्त डंडे पर लात मार दी। उन्होंने फिर डंडे से लात को स्पर्श किया, भैंस ने फिर लात मार दी। संत बैठकर इसी तरह करने लगे। लोग भी पास बैठकर यह खेल देखने लगे। सुबह से शाम होने को आई। न संत ने कुछ खाया न भैंस ने। संत

भैंस को डंडे से स्पर्श करते रहे तथा भैंस डंडे पर लात मारती रही। भैंस का भी आखिर मन होता है। मन बार–बार एक काम करने से ऊभ जाता है। शाम होते–होते भैंस थक भी गई तथा लात मारने से ऊभ भी गई। शाम को भैंस ने लात मारना छोड़ दिया। तब संत ने कहा कि इसे आराम से दुहो, अब यह कभी लात नहीं मारेगी।

मन को स्थिर करने का सबसे पहला उपाय यह हुआ कि जिस तरफ से आप अपने मन को हटाना चाहते हो उस तरफ से इसे ऊब दिलवा दो। आपका मन अपने कार्य में स्थिर न होकर आसपास भटकता रहता हो तो मन को पकड़कर अच्छी तरह आसपास घुमा दो। मन अगर दो बातों की ओर आकर्षित हो रहा हो तो इसे दस बातों की ओर आकर्षित कर दो तथा घुमाते रहो। आखिर में मन थकहार कर अपने आप बैठ जायेगा।

कई बार मन उल्ट हो जाता है। हम मन से कहते हैं कि खन्ना चलो तो ये कहता कि नहीं हम तो सरहिंद जायेंगे। हम सोचते हैं चलो कुछ काम कर लें तो मन कहता है नहीं यह आराम का समय है। ऐसे ही एक पति–पत्नी थे। पति जो कहता पत्नी सदा उसका उलट करती। अगर पति कहता कि आज मेरा कुछ विशेष खाने का मन है तो पत्नी पतली दाल बनाकर सामने रख देती। अगर पति कहता आज मेरी तबीयत ठीक नहीं है, तुम ऐसा करो कि आज दाल बना लो। तब पत्नी कहती नहीं आज तो मैनें आलू के पराठें तथा पूरियां बनानी

हैं। अगर पति कहता कि आज कुछ मेहमान आने वाले हैं, तुम ऐसा करो आज कुछ व्यक्तियों के लिए अच्छा सा भोजन बना लो। तब पत्नी कहती आज मेरा भोजन बनाने का मन नहीं है, तुम मेहमानों को पानी पिलाकर संतुष्ट कर देना। एक दिन कुछ विशेष मेहमान घर में आने वाले थे। पति ने सोचा क्या किया जाये? अगर पत्नी को खाना बनाने के लिए कहते हैं तो वह बनाईगी नहीं। कुछ सोचकर उसने अपनी पत्नी से कहा, देखो आज मेरी तबीयत कुछ ठीक नहीं है, तुम मेरी लिए मूंग की पतली दाल बना देना। दाल भी थोड़ी सी बनाना, शायद मैं न ही खाऊँ। आज कोई हमारे यहां आने वाला भी नहीं है इसलिए ज्यादा बनाने का कोई फायदा भी नहीं। पत्नी बोली, आज तो मैनें पूरी–छोले, राजमां, हलवा–खीर बनाने के बारे में सोचा था और मैं यह सब बीस लोगों के लिए बनाऊँगी। पति तो यही चाहता था वह चुपचाप बैठ गया। खाना तैयार हो गया, समय पर मेहमान आ गये तथा खाना खाकर चले गये।

इस तरह अगर मन आपसे विपरीत चल रहा हो तो मन को वह करने से मना कर दो जो आप उससे करवाना चाह रहे हो। मन अपने आप आपका इच्छित कार्य कर देगा। मन को नियंत्रण करने की विधियों में ध्यान रखना चाहिए कि हर विधि हर व्यक्ति के लिए नहीं है। एक व्यक्ति की मनःस्थिति, बुद्धि, समस्यायें तथा समाधान दूसरे व्यक्ति से भिन्न होते हैं। जो मैं हूँ वह आप नहीं हैं और जो आप हैं वह मैं नहीं हो सकता। सबकी अपनी–अपनी प्रकृति है।

मन चाहे जितना भी बदलता रहे एक बात पर इसे सदा स्थिर रखना चाहिए कि हमारा कल्याण किस बात में हैं। उपनिषद्‌ों में नचिकेता की कथा आती है। नचिकेता यमलोक चले गये तथा यम ने तीन वर नचिकेता को दिये। पहले वर में नचिकेता ने पिता की प्रसन्नता मांगी। दूसरे वर में स्वर्गप्राप्ति की साधन अग्नि का ज्ञान मांगा। तीसरे वर में नचिकेता ने आत्मा की स्थिति, गति तथा आत्मज्ञान मांगा। दो वर तो यम ने नचिकेता को सरलता से दे दिए लेकिन तीसरा वर देने से पहले यम ने नचिकेता की अच्छी तरह परीक्षा ली। यम ने नचिकेता को आत्मज्ञान के वर के बदले इस संसार के सर्वश्रेष्ठ सुखों को मांगने का प्रलोभन दिया। जो भी सुख के साधन सोचे जा सकते हैं नचिकेता उन सबको मांगने के लिए स्वतन्त्र था। लेकिन नचिकेता ने आत्मज्ञान ही मांगा। अगर नचिकेता का मन डोल जाता तो आज हम उसकी कथा न कहते।

# भगवद् लीलायें

## राम ते अधिक राम कर दासा

... गतांक से आगे

माता सीता को ढूंढने गये वानर दल को जब सफलता नहीं मिली तो समस्त वानरों ने सागर तट पर ही अपने प्राण त्यागने का निश्चय कर लिया। अंगद तट पर दूर्वा का आसन लगाकर बैठ गये तथा प्राण त्यागने के लिए उद्यत हो गये। अंगद वानर राज्य के युवराज हैं इसलिए वानर दल में सबसे ज्यादा उच्च पदवी उनकी ही है। अगर वे ही हिम्मत हार जायेंगे तो बाकी वानरों का क्या होगा। हनुमान चतुर तथा नीति को जानने वाले हैं। वे मनोविज्ञान को भी अच्छी तरह समझते हैं। उन्हें पता है कि अगर मुखिया ही हिम्मत हार जायेगा तो बाकी वानर भी कभी उत्साहित नहीं हो सकेगें। अंगद को समझाते हुये हनुमान बोले, 'युवराज अंगद! ये तुम क्या करने जा रहे हो? तुम राजकुमार हो, इस तरह का व्यवहार तुम्हे शोभा नहीं देता। अपने विशाल बाहुबल का अनुमान लगाओ। यह बल प्रभु राम का कार्य करने के लिए है। लेकिन तुम निराहार रहकर अपने प्राण त्यागने जा रहे हो। इससे तुम्हे कुछ प्राप्त नहीं होगा। तुम मर जाओगे तथा लोग कहेंगे, 'देखो बाली का पुत्र कितना अयोग्य वानर था। कार्य पूरा न होने पर उसने प्राण ही त्याग दिये। उसमें वीरता बिल्कुल नहीं थी।'

अंगद बोले, 'हनुमान! क्या आप नहीं जानते कि अगर हम असफल

वापिस गये तो सुग्रीव हमें मार डालेंगे। सुग्रीव ने पहले ही मेरे पिता का वध कर दिया है तथा अब मुझे भी मारकर वे निष्कंटक राज्य का भोग करेंगे।' जब व्यक्ति हताश हो जाता है तो सब तरह के बुरे विचार उसके मन में आ जाते हैं। अंगद की भी कुछ ऐसी ही मनोदशा थी। अंगद यह भूल गये थे कि स्वयं श्रीराम की इच्छा से वे युवराज पद पर प्रतिष्ठित हुये थे। श्रीराम के रहते सुग्रीव उनके अमंगल की कामना कर ही नहीं सकते थे, वैसे भी सुग्रीव शुद्ध हृदय के वानर थे, इसीलिए वे श्रीराम के प्रिय थे। मानस में तुलसीदास जी ने श्रीराम के मुँह से कहलवाया भी है :

'निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा।।– 5/43/3

अगर सुग्रीव के हृदय में किसी तरह की छल कपट की भावना होती तो श्रीराम की उन पर कृपा हो ही नहीं सकती थी। राम तो शुद्ध हृदय वालों को ही अपनी कृपा का पात्र बनाते हैं। लेकिन फिर भी अंगद के मन में शंका हो गई। इस शंका के कारण अंगद रामकार्य से विमुख हो रहे थे। शंका दुर्बलता की जननी है। अगर अपने सामर्थ्य में शंका हो जाये तो सामर्थ्य का ह्रास होना आरम्भ हो जाता है। भगवद्गीता में भगवान कहते हैं 'संशयात्मा विनश्यति' यानि संशय करने वाले का नाश हो जाता है। इसलिए कोई अच्छा कार्य करते हुये कभी शंका न करें। शंका करनी ही है तो बुरे कार्यों में करें। शंका करें कि मैं कोई बुरा कार्य नहीं कर सकता। इस शंका को पुष्ट कर दें। 'शायद कोई बुरा कार्य करने के

लिए मेरा सामर्थ्य पर्याप्त नहीं है।' इस तरह से शंका करें तो अच्छा, अन्यथा नहीं। अच्छा कार्य करने के लिए अगर अपना सामर्थ्य कम लगे भी तो यह विश्वास कर लें कि भगवान अपना सामर्थ्य मुझे दे देगें तथा मुझसे कार्य करवा लेंगे।

हनुमान साम, दाम, दंड, भेद सब नीतियों को जानने वाले हैं। साम यानि प्रशंसा, किसी से काम निकलवाने के लिए उसकी प्रशंसा करना। दाम यानि धन, धन के बल पर कार्य करवाना। दंड या शक्ति का भय दिखाकर कार्य करवाना। भेद, किसी से फूट डलवाकर कार्य करवाना। हनुमान अंगद से बोले, 'देखो तुम कितने शक्तिशाली हो, तुम्हारे कंधे कितने विशाल हैं। तुम हर कार्य कर सकते हो। तुम राज्य के युवराज हो तथा इसके उत्तराधिकारी हो। अगर तुमने दुर्बलता दिखाई तो महाराज सुग्रीव अवश्य ही तुम्हे राज्य से वंचित कर देगें।' इस तरह हनुमान ने साम, दाम तथा भेद से परिपूर्ण बातें कही। अंगद बोले,'मुझे पता है कि महाराज मुझे राज्य से वंचित कर देगें। इसी कारण मैं यहीं अपने प्राण त्यागने जा रहा हूं ताकि महाराज को मुझे राज्य से वंचित कर अपयश का भागी न बनना पड़े।' हनुमान ने अब दंड नीति अपनाई तथा बोले, 'देखो इससे तुम्हारा कोई भला नहीं होगा। इससे एक तो तुम्हारा तथा तुम्हारे दिवगंत पिता का अपयश होगा, साथ ही तुम्हारी माता भी कष्ट भोगेगी। तुम्हारे मरने के बाद सुग्रीव तुम्हारी माता का ध्यान नहीं रखेंगे। उसे दर–दर की ठोकरें खानी पड़ेंगी।' जैसे ही अंगद ने ये सुना वे बोले, 'नहीं मैं ऐसा नहीं होने दूंगा। मैं नहीं मरुँगा।' ऐसा कहकर अंगद

ने हाथ में पकड़ी कुशा तथा मृत्युपर्यन्त निराहार रहने का संकल्प छोड़ दिया। हनुमान बोले, 'अगर हम मां सीता को नहीं भी खोज पाते तो भी हमें वापिस जाना चाहिए। हम किसी तरह महाराज को समझा लेगे कि मां सीता को खोजने में असफल रहने में हमारा कोई दोष नहीं है।' 'लेकिन मैं वापिस कैसे जाऊँगा। मुझमें चलने की भी शक्ति नहीं है।' अंगद बोले। हनुमान ने कहा, 'मैं तुम्हें भगवान राम की लीलायों के बारे में बताऊँगा। इससे तुममें तथा समस्त वानर सेना में शक्ति का संचार होगा।' इसके बाद हनुमान रामजी की कथायों का वर्णन करने लगे। भगवान जब बालरुप में थे तो कैसे सबको अपनी मनमोहक छवि से मोहित कर लेते थे। 'ठुमक चलत रामचन्द्र बाजत पैजनियां' ठुमक–ठुमक कर जब वे चलते तो समस्त लोक भगवान को एकटक निहारते रहते। देवी–देवता रुप बदल–बदलकर भगवान का दर्शन करते रहते। काक भुशुंडि तो सदैव भगवान के बालरुप के आगमन की प्रतीक्षा करते रहते हैं तथा भगवान की लीलाओं को देखकर बार–बार मोहित हो जाते हैं। फिर भगवान ने कैसे वन में जाकर राक्षसों का संहार किया। सीता स्वयम्बर में शिव धनुष को भंग किया तथा परशुराम का क्रोध शांत किया। जटायु को जो पदवी भगवान ने दी उसके बारे में हनुमान ने बताया। बड़े आश्चर्य की बात है कि दशरथ के पुत्र होने पर भी राम दशरथ के देहान्त के समय अयोध्या से बाहर थे। दशरथ को मुखाग्नि तथा उनके अंतिम संस्कार की क्रियायें राम नहीं कर सके। दूसरी तरफ जटायु हैं जो जाति से गीद्ध हैं। गीद्ध अभक्ष्य

भक्षण करते हैं, लेकिन फिर भी जटायु की भक्तिभावना से द्रवित होकर भगवान ने उनको पिता समान दर्जा दिया। रावण द्वारा सीता हरण को रोकने के प्रयास में जब जटायु घायल हो गये तथा मृत्यु को प्राप्त हुये तो राम ने स्वयं उनका अंतिम संस्कार किया।

मरणासन्न जटायु को जब 'राम कहा तनु राखहु ताता' यानि हे तात् तुम शरीर को धारण करे रहो मैं तुम्हारे प्राण स्थिर कर देता हूँ तो जटायु बोले 'जा कर नाम मरत मुख आवा। अधमउ मुकुत होइ श्रुति गावा।। सो मम लोचन गोचर आगें। राखौं देह नाथ केहि खाँगें।।' यानि जिनका नाम मरते समय मुख में आ जाने से अधम भी मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं, ऐसा वेद कहते हैं। वे प्रभु मरते समय साक्षात् मेरे नेत्रों के सामने हैं तो मैं देह किस कारण से रखूँ। ऐसा कहकर जटायु ने देह धारण किये रहने से इन्कार कर दिया। जटायु की भावना से भगवान इतना द्रवित हुये कि उन्हें दिव्य चतुर्भुज रुप देकर परमधाम को भेज दिया।

हनुमान जब भगवान की लीलाओं का वर्णन कर रहे थे तो वातावरण में कुछ बदलाव आने लगा। ऐसा लगा जैसे पृथ्वी हिल रही हो। हनुमान बोले, 'लगता है कोई दानव इधर आ रहा है।' थोड़ी देर में उन्होंने देखा कि एक बहुत विशाल पक्षी धीरे–धीरे घिसटता हुआ उनकी ओर आ रहा है। अंगद बोले, 'देखो यह कितना विशाल गीद्ध है, लगता है यह सारे वानरों को खा जायेगा।' लेकिन वह गीद्ध बहुत धीरे–धीरे आ रहा था, उसके पंख जले हुये थे। इससे वानरों को

कुछ साहस हुआ कि गीद्ध उन्हें नहीं खा सकता। गीद्ध बोला, 'मेरे भाई जटायु के बारे में कौन बात कर रहा था।' हनुमान ने जाम्बवान् से कहा, 'यह गीद्ध अवश्य ही हमारे काम आ सकता है। हमें उससे बात करनी चाहिए।' वानर गीद्ध के पास गये तो गीद्ध ने पूछा, 'तुम कौन हो?' हनुमान बोले, 'मैं वायुपुत्र हनुमान श्रीराम का दूत हूँ, यह अंगद तथा जाम्बवान् हैं। हम जटायु के बारे में बात कर रहे थे।' गीद्ध बोला, 'राम, क्या ये राम दशरथ के पुत्र हैं?' 'हां, ये वही हैं।' हनुमान बोले। 'उनको तो वनवास हुआ था। क्या उनके वनवास की अवधि पूर्ण हो गई है?' गीद्ध ने पूछा। अंगद ने सोचा 'वाह! क्या अद्‌भुत पक्षी है। इसे इस वीराने में अकेले रहते हुये भी भगवान की लीलाओं के बारे में पता है।' फिर अंगद बोले, 'नहीं अभी उनके वनवास की अवधि शेष है। उनकी भार्या सीताजी का रावण ने हरण कर लिया है। मां सीता को खोजते हुये ही हम यहां तक आये हैं।' 'दुष्ट रावण, उसे तो मैं खा जाऊँगा', गीद्ध बोला। 'हनुमान बोले, 'पक्षीराज शीघ्र उसे खायो।' 'लेकिन मैं उड़ नहीं सकता, मेरे पंख जल गये हैं। मैं सम्पाति हूँ, जटायु का बड़ा भाई। मैं जटायु से बहुत ज्यादा शक्तिशाली हूँ।' 'जटायु तो रावण के साथ युद्ध करते हुये वीरगति को प्राप्त हो गये हैं।' हनुमान बोले। 'जटायु! मेरे भाई', सम्पाति का हृदय व्यथित हो गया। 'मैं उस दुष्ट रावण को मार भी तो नहीं सकता।' सम्पाति बोले। 'आपकी यह दशा कैसे हो गई।' अंगद ने पूछा। सम्पाति ने बताया, 'एक बार मुझमें तथा जटायु में ऊँची उड़ान भरने की होड़ लग गई। ऊँचा उड़ते

हुये हम सूर्य के पास पहुँच गये। जटायु तो सूर्य की गर्मी के कारण वापिस आ गया लेकिन अपने बल के मद में मैं सूर्य के बहुत पास चला गया। सूर्य की प्रचण्ड गर्मी से मेरे पंख जल गये तथा मैं मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर गया। उसके बाद से मैं तथा जटायु नहीं मिले। आज तुम्हारे मुँह से मैनें जटायु के बारे में सुना है। जटायु भगवान का कार्य करते हुये वीरगति को प्राप्त हुआ है। मुझे भी एक ऋषि ने बताया था कि जब मैं तुम्हे माता सीता के बारे में बता दूंगा तो मुझे खोई हुई शक्ति पुनः मिल जायेगी।' हनुमान एकदम से बोले, 'क्या कहा आपने?' सम्पाति ने उत्तर दिया, 'यही कि जब मैं तुम्हें माता सीता के बारे में बता दूंगा ..' हनुमान बीच में ही बोले, 'आपको पता है माता सीता कहां हैं?' सब वानर खुशी से उछलने लगे 'हमने माता सीता को ढूंढ़ लिया' सबके मुंह पर यही बात थी। सम्पाति बोले, 'मुझे उठाकर पर्वत के शिखर पर ले जाओ ताकि मैं समुद्र के पार स्थित लंका में माता सीता को देख सकूं।' सम्पाति पंख जल जाने के बाद तथा बूढ़े होने के कारण चलने–उड़ने में असमर्थ थे। बहुत से वानरों ने इक्ट्ठे होकर बहुत प्रयत्न से सम्पाति के विशाल शरीर को उठाया तथा पर्वत शिखर पर ले गये। शरीर निर्बल होने पर भी सम्पाति की दृष्टि तीक्ष्ण थी। गीद्ध दृष्टि वैसे भी विख्यात है। सम्पाति ने शिखर से समुद्र के पार देखकर कहा, 'हां, मुझे यहां से सोने की लंका दिखाई दे रही है। रावण अपने महल की छत पर खड़ा है, उसके आस–पास बहुत से राक्षस हैं। लेकिन माता सीता यहां नहीं हैं। मुझे अशोक बाग भी दिखाई दे रहा

है लेकिन माता सीता यहां भी दिखाई नहीं दे रही। हां, एक वृक्ष पर पीले रंग का वस्त्र अवश्य बंधा हुआ है।' हनुमान प्रसन्नता से बोले, 'हां माता सीता ने पीतवस्त्र ही धारण किये हुये थे।' जब रावण माता सीता का हरण करके ले जा रहा था तो माता सीता ने अपने पीतवस्त्रों के एक टुकड़े में अपने कुछ आभूषण बांधकर फैंके थे। ये आभूषण किष्किंधा में हनुमान को राम के आने से पहले मिले थे। राम–लखन ने जानकी के उन आभूषणों की पहचान भी कर ली थी। अब सब वानर प्रसन्न हो गये थे कि उन्हें माता सीता के बारे में समाचार मिल गया है। जब सम्पाति माता सीता का समाचार वानरों को दे रहे थे उनके पंख सीधे होने शुरु हो गये। सम्पाति के नये पंख भी उगने लगे। वानरों ने 'राम' का ऊँचा शब्द सुना। सम्पाति द्वारा किया गया राम का उच्चारण समस्त दिशायों में गुंजरित हो गया। 'रा' शब्द बोलते ही सम्पाति आकाश में बहुत ऊँचे उठ चुके थे, 'म' का गूंजन होते–होते सम्पाति आकाश में तारे की तरह प्रकाशमान तथा सूक्ष्म दिखाई देने लगे थे। रामकार्य करते ही सम्पाति की सद्गति हो गई तथा उन्हें परमधाम की प्राप्ति हुई।

हनुमानादि को माता सीता का पता तो चल गया था लेकिन अथाह सागर को लांघकर माता सीता का समाचार कौन लेकर आयेगा, यह समस्या उत्पन्न हो गई। सभी वानर अपने–अपने बल का आंकलन कर रहे थे। जाम्बवान् बोले 'जरठ भयउँ अब कहइ रिछेसा। नहिं तन रहा प्रथम बल लेसा।।'–मानस/4/28/4

यानि अब मैं बूढ़ा हो गया हूं तथा पहले जैसे बल का लेशमात्र भी अब मुझमें शेष नहीं है। अंगद बोले 'अंगद कहइ जाउँ मैं पारा। जियँ संसय कछु फिरती बारा।।' यानि मैं सागर पार तो कर लूँ लेकिन वापिस आने के बारे में मैं निश्चित नहीं हूँ। इस पर जाम्बवान् ने हनुमान से कहा,

'कहइ रीक्षपति सुनु हनुमाना। का चुप साधि रहेउ बलवाना।।
पवन तनय बल पवन समाना। बुधि बिबेक बिग्यान निधाना।।
कवन सो काज कठिन जग माहीं। जो नहिं होइ तात तुम्ह पाहीं।।
राम काज लगि तव अवतारा। सुनतहिं भयउ पर्बताकारा।।—मानस/4/29/2—3

यानि हे हनुमान! तुम बलवान होकर चुप क्यों बैठे हो। तुम पवनपुत्र हो तथा पवन के वेग के समान तुम्हारा बल है। बुद्धि, विवेक तथा विज्ञान के तुम भंडार हो। संसार में ऐसा कौन सा कठिन काम है जो कि तुम नहीं कर सकते। रामकाज करने के लिए ही तो तुम्हारा अवतार हुआ है। यह बात सुनते ही हनुमान का शरीर पर्वत के समान विशाल हो गया।

हनुमान को जन्म से ही अतुलित बल प्राप्त है। बचपन में एक बार हनुमान ने खेल—खेल में सूर्य को फल समझकर मुँह में रख लिया। इसी से समझा जा सकता है कि हनुमान में कितना बल है। सूर्य पृथ्वी से तेरह लाख गुणा बड़ा है तथा उसकी सतह का तापमान ही छः हजार डिग्री सैंटीग्रेड है। लोहा तीन हजार डिग्री सैंटीग्रेड पर पिघलता है। गर्मियों में चालीस डिग्री तापमान पर ही मनुष्य

बेहाल हो जाते हैं। लेकिन हनुमान ने इतने विशाल तथा तप्त सूर्य को मुँह में रख लिया। कैसे रामसेवक हैं!! (क्रमशः)

# साधारण जिज्ञासायें और उनके समाधान

## पीपल की पूजा क्यों की जाती है?

### अध्यात्मिक दृष्टिकोण

पीपल को सब वृक्षों में उत्तम माना गया है। यह भी एक तथ्य है कि न तो पीपल के फल और न ही लकड़ी हमारे काम आती है लेकिन फिर भी इसका महत्व है। श्रीमद्भगवद्गीता के दसवें अध्याय विभूतियोग के 26वें श्लोक में भगवान कहते हैं सब वृक्षों में पीपल मैं हूं। पीपल में भगवान विष्णु का वास माना जाता है। पीपल की जड़ में शनिवार वाले दिन लक्ष्मी का वास माना जाता है इसलिए शनिवार संध्या को पीपल की जड़ में दीया भी लगाया जाता है। स्कन्द पुराण के अनुसार पीपल की जड़ में विष्णु, तने में केशव, शाखाओं में नारायण, पत्तों में हरि और फलों में देवताओं का वास है।

### पीपल जीवन का प्रतीक

केवल पीपल ही ऐसा वृक्ष है जो दिन–रात ऑक्सीजन छोड़ता है। सब पेड़–पौधे दिन में ऑक्सीजन तथा रात को कार्बनडाईआक्साइड छोड़ते हैं। हमारे लिए ऑक्सीजन प्राणवायु है। इससे पीपल का हमारे लिए महत्व बढ़ जाता है। पीपल का एक और गुण भी है कि सर्दियों में इसके नीचे गर्माहट रहती है तथा गर्मियों में शीतलता। इसी कारण पीपल के ऊपर असंख्य जीव–जन्तु, पक्षी आदि निवास करते हैं।

पीपल की शाखायें घनी तथा अपने–आप फैलती रहती हैं। पीपल की शाखायों से निकली दाड़ियां हवा में झूलती हुई जमीन को स्पर्श कर जड़ का रुप धारण कर लेती हैं। इससे पीपल के नये तने तथा वृक्ष का जन्म हो जाता है। पीपल के फल में बीज बहुत महीन होते हैं, लगभग सरसों के दानें जितने बड़े। इस बीजों को बो देने पर पीपल नहीं उगता। जब कोई पक्षी पीपल के फल को खाता है तो पीपल के बीजों का उसके पाचन तंत्र में विघटन नहीं होता। जब यह बीज उसके पाचन तंत्र से बाहर आते हैं तो यह अंकुरित होते हैं। इसी कारण पीपल दीवारों, पुरानी इमारतों में भी उग आता है क्योंकि पक्षी वहां बैठकर बीठ कर देते हैं। पीपल बिना खाद, पानी दिये भी अपने आप उग जाता है। पीपल पृथ्वी पर जीवन के अस्तित्व, इसकी जटिलताओं तथा निरन्तरता का प्रतीक है। यह अपने आप पैदा हो जाता है, आगे बढ़ता रहता है तथा अपने अतिरिक्त अन्य असंख्य जीवों को भी आश्रय देता है। पीपल के पत्तों का स्पर्श होने से हवा में से संक्रामक जीवाणु नष्ट हो जाते हैं। इसकी छाल, पत्तों और फल से रोग नाशक दवाइयां भी बनाई जाती हैं।

पीपल घरों में उग आता है तो उसे निकालने में वहम् हो जाता है क्योंकि पीपल को उखाड़ना पाप माना गया है। पीपल जीवन का प्रतीक है इसीलिए इसे नष्ट करने को पाप माना जाता है। लेकिन घरों में पीपल उगने पर उसे घर से निकालकर बाहर किसी खुली जगह में लगा देने से कोई दोष नहीं लगता।

# गंगाजल को पवित्र क्यों माना जाता है?

गंगाजल कभी खराब नहीं होता। कभी आप किसी कांच की बोतल में घर का जल भरकर रख दें तथा कुछ दिन बाद उसे देखें तो जल में कीड़े पैदा हो जाते हैं तथा कई अन्य अशुद्धियां भी आ जाती हैं। लेकिन गंगाजल को वर्षों तक रखने पर भी वह खराब नहीं होता। गंगा को देवताओं की नदी भी कहा जाता है।

## गंगा का महत्व

गंगा पहले स्वर्ग की नदी थी। अपने पूर्वजों के उद्धार के लिए भागीरथ बड़ी कठिन तपस्या से गंगा को पृथ्वी पर लेकर आये। पृथ्वी पर भगवान शिव ने गंगा को अपनी जटाओं में धारण किया। गंगा को भागीरथी, जाहन्वी नामों से भी जाना जाता है। गंगा स्नान करने से असंख्यों पापों का नाश हो जाता है। मुक्तिलाभ के लिए मृत व्यक्ति की अस्थियों को भी गंगा में प्रवाहित किया जाता है।

## गंगा की आज की दशा

प्रदूषण के कारण गंगाजल की गुणवत्ता प्रभावित हो रही है। गंगा मात्र धार्मिक तथा आध्यात्मिक श्रद्धा का केन्द्र नहीं बल्कि उत्तरभारत के कई राज्यों की जीवनरेखा है। गंगाजल क्यों और कैसे प्रदूषित हो रहा है इस बारे में लिखने की कोई बहुत अधिक आवश्यकता नहीं है। लेकिन इसके लिए अशिक्षा,

हठधर्मिता, अज्ञानता तथा लापरवाही ही जिम्मेवार हैं। जो दशा गंगा की है उससे कुछ बुरी दशा यमुना की है। कुछ वर्ष पहले दिल्ली में कुछ समय रहे तो वहां एक सज्जन यह मानने का तैयार नहीं हुये कि यमुना प्रदूषित है। उनका मानना था कि यह परम पवित्र है तथा इसमें चाहे कुछ भी डाल दिया जाये यह गंदी नहीं हो सकती। जहां तक धार्मिक निष्ठा का प्रश्न है उनकी भावना वन्दनीय है लेकिन यह भावना मूर्खतापूर्ण उस समय बन जाती है जब वे यह मानते हैं कि इसमें किसी को कुछ डालने से रोकने की कोई आवश्यकता ही नहीं है।

## माथे पर तिलक क्यों लगाया जाता है?

दोनों भोहों के मध्य क्षेत्र को भ्रूमध्य कहते हैं। इस स्थान पर आज्ञा चक्र की स्थिति मानी जाती है। इस चक्र पर ध्यान केन्द्रित करने से मन शीघ्र एकाग्र होता है। इसे चेतना केन्द्र भी कह सकते हैं। यह तृतीय नेत्र या दिव्य नेत्र भी है। आन्तरिक रुप से इस चक्र पर ध्यान केन्द्रित करने से लाभ होता है तथा बाहरी रुप से इस पर तिलक करने से लाभ मिलता है। साधारणतयाः चन्दन का तिलक किया जाता है। चन्दन की प्रकृति शीतल होती है, जिससे वह इस स्थान को शीतल रखता है। हमारे मस्तिष्क का इस चक्र से सीधा सम्बन्ध है। जब मस्तिष्क पर ज्यादा बोझ होता है, तनाव होता है तो भौहें तन जाती हैं तथा यह चक्र भी तनाव में आ जाता है। इस पर तिलक लगाने से इस चक्र में दृढ़ता

आती है जिससे तनाव सहन करने तथा शांत रहने की हमारी क्षमता बढ़ जाती है। तिलक श्रृंगार का भाग है तथा इससे धार्मिकता की भावना का भी विकास होता है।

## तुलसी का पौधा घरों में क्यों लगाया जाता है?

तुलसी धार्मिक तथा सात्विक भावना की परिचायक है। तुलसी में बहुत से औषधीय गुण भी हैं। इसका मुख्य गुण है कि यह हमारी रोग प्रतिरोधक शक्ति को सुदृढ़ करती है। घर में तुलसी लगाने से वातावरण भी सात्विक हो जाता है तथा इसके पत्तों का सेवन करने से रोग प्रतिरोधक शक्ति मजबूत हो कई रोगों से मुक्ति मिलती है। तुलसी के पत्तों को पानी में उबालकर पीने से लाभ मिलता है। घरों मे आमतौर पर पीने के पानी को छोटी टंकी में रख लेते हैं उस टंकी में अगर तुलसी के कुछ पत्ते डाल दिये जायें तो पानी में तुलसी के गुण भी आ जायेंगे तथा पानी भी ज्यादा रुचिकर लगेगा। लेकिन ऐसा सप्ताह में चार दिन से ज्यादा न करें। बरसात में कई रोग हो जाते हैं। बुखार, टाईफाइड होने पर तुलसी का एक प्रयोग बहुत लाभकारी है। अगर बुखार उतर न रहा हो तो तुलसी के चार पत्ते, चार काली मिर्च के दाने, थोड़ी सी मिश्री मिलाकर पीस लें तथा चाटकर खायें। इससे बुखार भी उतर जायेगा तथा खाने में भी रुचि होगी।

# ब्रह्म विचार

परमब्रह्म इस संसार में होते हुये भी इससे भिन्न है। इसके अनन्त भेद हैं लेकिन फिर भी इसके भेद नहीं किये जा सकते। इस संसार में हम कह सकते हैं कोई काला है, कोई गोरा है, कोई शक्तिशाली है, कोई कमजोर है, कोई छोटा है, कोई बड़ा है, लेकिन ब्रह्म के बारे में ऐसा नहीं कहा जा सकता। वस्तुओं का, जीवों का, इस संसार की किसी भी वस्तु का जो कोई भी वर्गीकरण हम कर सकते हैं उसमें से किसी में भी ब्रह्म की स्थिति को निर्धारित नहीं किया जा सकता। भाषा के तौर पर हम मात्र इतना कह सकते हैं कि वह अद्वितीय है, सबसे परे है, सबसे उच्च है, लेकिन इतना कहना भी बहुत अपर्याप्त है। ब्रह्म के गुणों के बारे में विचार करने या बताने के लिए हमारे पास कोई भाषा ही नहीं है। यह नितांत अनुभव का विषय है। मेरे एक छोटी सी पिन चुभ जाये तो दर्द होगा। आप पूछेंगे कैसा दर्द हुआ मैं कहूंगा काफी ज्यादा हुआ। आपको ये तो पता चल जायेगा कि दर्द काफी हुआ लेकिन ठीक–ठीक कितना हुआ इसका पता नहीं चलेगा। इसका सही पता बताने के लिए आपको भी उसी ढ़ंग से पिन चुभोनी पड़ेगी जिस ढ़ंग से मुझे चुभी। हमारा बताने का सामर्थ्य इतना कम है कि हम एक छोटी सी पिन के दर्द के बारे में नहीं बता सकते, तो ब्रह्म के बारे में तो क्या बतायेंगे। ब्रह्म अनुभव करने की बात है, बताने की बात नहीं। इतना अवश्य है कि ब्रह्म को जान लेने के बाद बताने के सामर्थ्य में वृद्धि हो जाती है।

संत–महापुरुष किसी को कह दें कि तू ठीक हो जायेगा, तेरे कार्य ठीक हो जायेंगे तो वाकई वैसा हो जाता है। कभी आपने सोचा है कि ऐसा क्यों होता है। उन्होंने ब्रह्म को जान लिया होता है तथा जो वह बताते हैं वह पूरा हो जाता है। उनके बताने के सामर्थ्य का विकास हो जाता है। वह भाषा या बुद्धि के स्तर पर कुछ नहीं कहते। देखा जाये तो वे कुछ कहते भी नहीं बस एक कहने की क्रिया हो जाती है।

ब्रह्म को संसार की किसी भी वस्तु में नहीं खोजा जा सकता। संसार में खोजने पर हीरे–मोती, धन, संपदा, रिश्ते–नाते तो मिल सकते हैं लेकिन ब्रह्म नहीं मिल सकता। संसार ठहरा नाशवान और ब्रह्म अविनाशी, फिर संसार से ब्रह्म का बोध कैसे हो सकता है। संसार नहीं रहेगा फिर भी ब्रह्म रहेगा, लेकिन संसार रहे और ब्रह्म न हो ऐसा नहीं हो सकता। कुछ होने या न होने से ब्रह्म को कोई अन्तर नहीं पड़ता। हमारे पास कुछ होने या न होने से हमें अन्तर पड़ता है लेकिन ब्रह्म इन सब बंधनों से मुक्त है। यह संसार और हम तो समय की धारा में बह रहे हैं। समय के साथ बनते और नष्ट होते रहते हैं। लेकिन ब्रह्म तो जब समय भी नष्ट हो जायेगा तब भी रहेगा। उसकी ऐसी सुन्दर विशेषतायें है जो अन्यत्र कहीं देखने में नहीं आती। वह शाश्वत है, हमेशा से रहा है, हमेशा रहेगा। वह परिवर्तन रहित है। यह संसार तो सदैव बदलता रहता है लेकिन ब्रह्म में कभी परिवर्तन नहीं आता, वह सदैव एक समान रहता है। ब्रह्म न तो

घटता है, न बढ़ता है। वह सदैव उदासीन है। कोई चाहे ब्रह्म की प्रशंसा कर ले चाहे निंदा, इससे ब्रह्म को कोई अन्तर नहीं पड़ता। लेकिन इससे प्रशंसा या निंदा करने वाले को अन्तर अवश्य पड़ता है। सर्दियों में आप चाहे खिली हुई सूर्य की धूप में बैठ जायें चाहे किसी अन्धेरे, ठंडे कोने में, इससे सूर्य को कोई अन्तर नहीं पड़ता। इससे आपको अन्तर पड़ता है। ब्रह्म की प्रशंसा करना उससे लाभ लेने के समान है तथा उसकी निंदा उससे मिल रहे लाभ को छोड़ने के समान। लाभ ब्रह्म से निरन्तर निकल रहे हैं, जो बुद्धिमान हैं वे उन्हें ग्रहण कर लेते है। दूसरे लोग उनको दोषदृष्टि से देखते रहते हैं।

ब्रह्म की इस संसार के प्रति कोई आसक्ति नहीं है। यह संसार तो ब्रह्म से निकल रही शक्तियों का प्रपंचमात्र है। स्वयं ब्रह्म सब प्रपंचों से परे हैं। मानस में तुलसीदासजी ने इसे 'सर्बरुप सब रहित उदासी' कहा है। ब्रह्म के सर्वथा उदासीन होने पर भी यह सृष्टि उन्हीं पर निर्भर है। ब्रह्म का इस संसार से कोई स्वार्थ नहीं है फिर भी वे इसे चला रहे हैं। हम बिना स्वार्थ के कितने कार्य करते हैं। किसी को दान देगें तो यह सोचकर देगें कि हम पुण्य कर रहे हैं। लेकिन ब्रह्म पाप–पुण्य से परे हैं, फिर भी सर्वथा निस्वार्थ होने पर उनके आश्रय से सबके कार्य होते रहते हैं। सबके कारण तथा सबको नियन्त्रित करने वाले ब्रह्म को ही हम ईश्वर कह देते हैं। वह सर्वव्यापक हैं, सबको आश्रय देते हैं। ईश्वर के लिए समय और स्थान का कोई बन्धन नहीं है। वह सब समय तथा सब

स्थानों में समान रुप से विद्यमान हैं। हम आज के समय में जी रहे हैं, कल जो निकल गया हम वहां नहीं हैं, कल जो आने वाला है, हम वहां भी नहीं है। हम मात्र वर्तमान में हैं। इसी तरह अगर हम गोबिन्दगढ़ में बैठे हैं तो इसका अर्थ हुआ कि हम कहीं और नहीं हैं। लेकिन ईश्वर के लिए समय और स्थान का ऐसा कोई बन्धन नहीं है। ईश्वर सर्वसमर्थ हैं। वह ब्राह्मंड को बना सकते हैं, नष्ट कर सकते हैं तथा इसका स्वरुप बदल सकते हैं। ईश्वर अपनी चेतना तथा इच्छा द्वारा ही सब कार्य कर लेते हैं। जब तक यह सृष्टि गतिमान है ईश्वर इसको संचालित करते रहते हैं। यह ईश्वर का सक्रिय रुप है। जब यह सृष्टि पूर्णतयाः नष्ट हो जाती है तो यह ईश्वर में समा जाती है। तब ईश्वर को छोड़कर कुछ शेष नहीं रहता। इसलिए ही ईश्वर को शेष भी कहते हैं। यह ईश्वर का निष्क्रिय रुप है।

ईश्वर का कार्य कभी नहीं रुकता। जब ईश्वर निष्क्रिय रुप में होते हैं तब भी अनन्त क्रियायें चलती रहती हैं। समस्त क्रियायें ईश्वर के आश्रित होकर ही चलती हैं लेकिन वे ईश्वर से भिन्न होती हैं। सृष्टि बनती है, बदलती है या नष्ट होती है ये सब क्रियायें ईश्वर में प्रवेश नहीं पाती बल्कि ईश्वर के प्रवृष्ट होने से ही ये सारी क्रियायें चलती हैं। सृष्टि को उत्त्पन्न करने वाले, इसकी पालना करने वाले तथा इसको नष्ट करने वाले ईश्वर ही हैं। लेकिन ईश्वर के लिए यह सब कुछ कर्मरुप नहीं है बल्कि क्रियारुप ही है।

ईश्वर ने इस सृष्टि की रचना की है इसलिए ईश्वर को इसकी सब क्रियायों, प्रतिक्रियायों का ज्ञान है। इसी कारण ईश्वर इस सृष्टि में जो चाहें वह कर सकते हैं। हम तो मात्र भौतिक स्तर पर वस्तुओं को नियंत्रित करने का प्रयास करते हैं लेकिन ईश्वर पराभौतिक, मानसिक, अध्यात्मिक सभी स्तरों को नियंत्रित करते हैं। वह सिद्धांतों की रचना करते हैं तथा उन सिद्धांतों के अनुरुप इस सृष्टि को चलाते हैं। जबकि हम इसका उलट करते हैं। हम सृष्टि को चलाने वाले सिद्धांतों की खोज करते हैं तथा उनका लाभ लेने का प्रयास करते हैं। ईश्वर को जानने का भौतिक रुप से सबसे ज्यादा लाभ यही है कि हमें इस सृष्टि को चलाने वाले सिद्धांतों का ज्ञान तथा उनके उपयोग का सामर्थ्य प्राप्त हो जाता है। इस सृष्टि में अनन्त रहस्य हैं, लेकिन वे रहस्य मात्र हमारे लिए ही हैं, ईश्वर के लिए नहीं। जब हम ईश्वर को जानने लगते हैं तो वे रहस्य हमारे सामने स्वयं ही प्रकट होने लगते हैं। जितना ज्यादा हम ईश्वर के पास जाते हैं उतने ज्यादा रहस्यों के पर्दे हमारे सामने खुलते रहते हैं। जब हममें तथा ईश्वर में अभेद हो जाता है तो फिर कोई रहस्य नहीं रहता।

# आत्म विचार

पृथ्वी पर जीवन घटनाओं की एक श्रृंखला है। अच्छी–बुरी, सुख–दुख देने वाली घटनायें घटित होती रहती हैं। मनुष्य इन घटनाओं का या तो आन्नद उठाता रहता है या इनसे पीड़ित होता रहता है। अनंतकाल से जीवन का यह क्रम इसी तरह से चला आ रहा है तथा अनंतकाल तक इसी तरह चलता चला जायेगा। हममें सदैव कुछ न कुछ प्राप्त करने की इच्छा बनी रहती है। जब प्राप्ति की एक इच्छा पूर्ण हो जाती है तो कोई दूसरी नई इच्छा जागृत हो जाती है। इस तरह इच्छायों का यह क्रम कभी समाप्त नहीं होता। हमारा कभी कोई एक लक्ष्य नहीं बन पाता। किसी से कभी पूछो कि उसका जीवन में लक्ष्य क्या है तो वह अपने जीवन की तात्कालिक इच्छायों की पूर्ति को अपने जीवन का लक्ष्य बता देगा। कुछ महीने या वर्ष बाद उसी व्यक्ति से अगर उसके जीवन का लक्ष्य पूछा जाये तो वह उस समय की इच्छायों के अनुसार अपने जीवन का लक्ष्य बता देगा। जीवन हमें एक मिला है तथा जीवन में हमारे लक्ष्य अनेक हैं जो कि समय के अनुसार बदलते रहते हैं। हमारे जीवन के लक्ष्य हमारी स्वयं की इच्छायों के अनुसार बदलते हैं। लेकिन हम स्वयं कौन हैं? वह कौन है जो हमें इतना भ्रमाता रहता है या फिर वह स्वयं ही भ्रमित होता रहता है। अनन्त इच्छायों की पूर्ति के बाद भी हो सकता है कि सन्तुष्टि का भाव न आये। बहुत धन कमा लिया, शरीर को बहुत सुन्दर बना लिया, बहुत से मित्र, रिश्तेदार बन गये, बहुत

यश–मान प्राप्त कर लिया, लेकिन इस सबसे वास्तविक लाभ क्या हुआ? हमारा जीवन एक श्वास का है। जब व्यक्ति अपना अंतिम श्वास लेता है तो उसके बाद जीवन समाप्त हो जाता है। श्वास शरीर से निकल जाये तो 'मेरी' मृत्यु हो जाती है। 'मैं' भी पता नहीं क्या है। इस 'मैं' की खुशियां, गम, सुख–दुख, मान–अपमान, हानि–लाभ सब कुछ बाहरी परिस्थितियों पर निर्भर करता है। अनुकुल और प्रतिकूल परिस्थितियां इस 'मैं' को सदा घेरे रहती हैं। यह 'मैं' भीतर कहीं है लेकिन इसकी निर्भरता बाहर है। इस संसार में जिसे जो कुछ भी चाहिये बाहर से ही चाहिए। लेकिन बात फिर वहीं पर आ जाती है कि आखिर यह 'मैं' है क्या? यह जीवन भी क्या है तथा क्यों है?

मनुष्य जीवन को हम ज्ञान की एक प्रक्रिया कह सकते हैं। ज्ञान के लिए ज्ञानी तथा ज्ञान योग्य वस्तु का होना आवश्यक है। जब ज्ञानी को ज्ञान योग्य वस्तु के बारे में पता चलता है तो उसे ज्ञान बोलते हैं। ज्ञान से अनुभव होता है। यह जीवन विभिन्न अनुभवों का समूह है। अनुभव चेतना से होते हैं। सर्वथा अचेतन अवस्था में हुये अनुभव स्मरण नहीं रहते। अनुभव, ज्ञान तथा चेतना एक दूसरे के पूरक हैं तथा एक–दूसरे की वृद्धि करते रहते हैं। इनकी आपसी क्रिया– प्रतिक्रिया से जिसे लाभ होता है वह 'मैं' हूँ। इन तीनों के सम्मुचय को मात्र ज्ञान भी कह सकते हैं। समस्त कार्य ज्ञान से ही उत्त्पन्न होते हैं। ज्ञान के अनुसार अच्छे–बुरे कार्य होते हैं। ज्ञान को कार्य करवाने के लिए बाहरी

क्रियायों, शरीरादि की आवश्यकता होती है। 'मैं' के बारे में जानने के लिए भी ज्ञान ही सेतु है। जैसे जैसे हमारा 'मैं' के बारे में ज्ञान बढ़ता रहता है हमारा इस 'मैं' पर नियन्त्रण स्थापित होता जाता है। जब हम 'मैं' को पूरी तरह जान लेते हैं फिर कोई विक्षेप, चिन्ता, परेशानी नहीं रहती। क्योंकि समस्त भावनाओं को यह 'मैं' ही अनुभव करता है और यह ''मैं' है क्या इसका हमें पता नहीं होता। जब हम 'मैं' को जान जाते हैं तो बाहरी भावनाओं का इस पर प्रभाव कम होने लगता है। इस 'मैं' को उद्वेलित करने वाली पचानवें फीसदी भावनायें बाहर की होती हैं। धन, परिवार, मित्र, सम्बन्धी, मान, साख ये सब हमसे बाहर हैं। लेकिन इनके बन्धन हमारे गहरे में हैं और हमारे भीतर जो 'मैं' है उसे इन सब भावनाओं ने जकड़ रखा है। इसमें हम स्वयं भी संतप्त रहते हैं और यह 'मैं' भी पीड़ित होता है। इस ताप से मुक्ति के लिए हमें 'मैं' को जानना होगा। इससे 'मैं' भी बन्धनमुक्त हो जायेगा तथा हम भी। तब हम इन दोनों को एक रुप में देख सकेंगे। वैसे हम और 'मैं' हैं तो एकरुप ही, बस समझने की दृष्टि से इनमें भेद किया था। ऐसा भेद करना आवश्यक भी हैं क्योंकि 'मैं' को समझने के लिए यह आवश्यक है कि पहले यह मान लिया जाये कि मैं, 'मैं' नहीं हूँ। बहुत गहरी बात है, विचार करके देखो।

# श्रेष्ठता कैसे सिद्ध हुई।

एक व्यापारी दुकान से वापिस घर आ रहा था। रास्ते में उसे दो स्त्रियां मिली। पहली स्त्री बोली,'मैं ज्येष्ठालक्ष्मी हूँ।' दूसरी बोली, 'मैं लक्ष्मी हूँ।' ज्येष्ठालक्ष्मी दरिद्रता की देवी है तथा लक्ष्मी की ही बड़ी बहन है, इसलिए उसे ज्येष्ठा यानि बड़ी लक्ष्मी कहते हैं। व्यापारी बोला, 'देवियो आप मुझसे क्या चाहती हैं जो मुझे दर्शन दिये।' लक्ष्मी मंद–मंद मुस्कुराते हुए बोली, 'तुम बताओ कि हममे से ज्यादा सुंदर कौन है?' अब इस बारे में कहने की कोई आवश्यकता नहीं है लेकिन कहे कौन? व्यापारी पहले तो अपने मन की बात कहने लगा लेकिन फिर एकदम से चुप हो गया। दोनों में से जिसे वह ज्यादा सुंदर बतायेगा वह तो प्रसन्न हो जायेगी लेकिन दूसरी उससे नाराज हो जायेगी। बड़ी पेचीदा स्थिति उत्त्पन्न हो गई। वह बोला, 'आज सारा दिन मुझे बहुत काम था तथा अभी मेरा दिमाग परेशान है इसलिए मैं सही निर्णय नहीं कर पाऊँगा। आप मेरे साथ मेरे घर चलिये वहां मैं आपका आतिथ्यसत्कार भी कर लूँगा तथा आपके प्रश्न का उत्तर भी दे दूँगा।' ऐसा कहकर व्यापारी ने सोचने के लिए समय ले लिया तथा उनको अपने घर ले गया। दोनों का सत्कार कर व्यापारी ने कुछ सोचा तथा लक्ष्मी से बोला, 'मां जब आप घर में प्रवेश करती हैं तो बहुत सुन्दर लगती हैं।' जब उसने ऐसा कहा तो ज्येष्ठालक्ष्मी की त्यौरियां चढ़ने लगी लेकिन वह तुरन्त

ज्येष्ठालक्ष्मी से बोला, 'मां! आपकी सुन्दरता की तो कोई तुलना ही नहीं है, जब आप घर से जा रही होती हैं तो बहुत अच्छी लगती हैं।' व्यापारी से ऐसी बात सुनकर दोनों संतुष्ट हो गई तथा अपने–अपने स्थान को चली गई।

# अगस्त मास का राशिफल

मेष : चू चे चो ला ली लू ले लो अ

मासारम्भ में कार्य स्थिति में सुधार हो। निर्वाह योग्य आय के साधन बनेंगे। घर में मंगल कार्य। आंखों और पेट में विकार हो सकता है। गुप्त शत्रुओं से सावधान रहें। श्री दुर्गा कवच का पाठ करें।

वृष : ई उ ए ओ वा वी वू वे वो

कारोबार मध्यम, पारिवारिक चिन्ता, स्थान परिवर्तन के योग। चर्मरोग हो सकता है। विघ्न–बाधायों के बावजूद धनागम होता रहेगा। मासान्त में किसी मित्र के सहयोग से कार्य बने। गीता पाठ करें।

मिथुन : का की कु घ ड़ छ के को हा

व्यवसायिक कार्यों में सफलता, मानसिक तनाव। वाहन सावधानी से चलायें। मासान्त में अचानक लाभ किन्तु खर्च भी अधिक रहेगा। स्नान के बाद सूर्य को अर्ध्य दें।

कर्क : हो हू हे हो डा डी डू डे डो

परिश्रम के बाद धनागम और सुखसाधनों में वृद्धि हो। स्त्रीवर्ग के लिए मासारम्भ शुभ। आलस्य बना रहे। लेन–देन में झगड़ा हो सकता है। आय में सुधार लेकिन आकस्मिक खर्च बढ़ेगें। शिवपूजन कल्याणकारी।

सिंह : मा मी मू मे मो टा टी टू टे
मासारम्भ में आय कम खर्च ज्यादा। वृथा भागदौड़, स्वास्थ खराब रह सकता है। मध्य मास आय के साधन बनेंगे। क्रोध अधिक तथा किसी कार्य में मन न लगे। राहु का मंत्रजप करें।
कन्या : टो पा पी पू ष ण ठ पे पो
धार्मिक कार्यों में रुचि, धनलाभ व उन्नति के अवसर मिलें। शुभकार्यों में खर्च, वाहनसुख मिले। नये कार्य की योजना बने, निर्वाह योग्य धन प्राप्त हो। शनिवार छायापात्र का दान करें।
तुला : ना री रु रे रो ता ती तू ते
उलझनों के बावजूद निर्वाहयोग्य धन प्राप्त हो। राशीश शुक्र का नीच राशि में होना स्वस्थ संबंधी समस्यायें पैदा कर सकता है। आगे चलकर अचानक लाभ के संकेत। शिव पर दूध चढ़ायें।
वृश्चिक : तो ना नी नू ने नो या यी यू
बुध के उदय होने से भाग्योन्नति तथा लाभ हो। वाहन सावधानी से चलायें। संतान सुख, अचानक धन लाभ, पारिवारिक माहौल ठीक। सूर्योपासना करें।
धनु : ये यो भा भी भू ध फ ढ़ भे
जमीन जायदाद पर खर्च, पारिवारिक वातावरण ठीक। बनते कार्यों में बाधा। गुरु की दृष्टि होने से पदौन्नति तथा धनलाभ के योग। मासान्त में वृथा भ्रमण

तथा फिजूलखर्च। शनिवार को तेल दान करें।

मकर : भो जा जी खी खू खे खो गा गी

कठिनाईयों के बावजूद धनलाभ व तरक्की के अवसर। किए गये प्रयास, कार्यों का लाभ मिले। स्वभाव में तेजी, फिजूलखर्ची बढ़े। आय कम हो, नये लोगों से सम्पर्क हो। लक्ष्मीपूजन करवायें।

कुम्भ : गू गे गो सा सी सू से सो दा

घर में मांगलिक कार्य हों। आलस्य में वृद्धि, तनाव बना रहे। अधिक परिश्रम से गुजारे लायक धन मिले। आय कम खर्च अधिक। नये लोगों से सम्पर्क, रुके कार्य बनें। स्वस्थ ठीक। सूर्य को जल दें।

मीन : दी दू थ झ दे दो चा ची

व्यवसायिक कार्यों में सफलता। खर्च अधिक, संतानपक्ष से चिंता। शत्रुभय बना रहे। पारिवारिक वातावरण सुखकारी। मासान्त में धनलाभ, मान– सम्मान वृद्धि। सूर्य नारायण के बीजमन्त्र का जाप करें।

– आचार्य रत्नपाल शास्त्री
श्री दुर्गा माता मन्दिर,
गुरु की नगरी,
मंडी गोबिन्दगढ़।

# भक्त बाबा फरीद के श्लोक

जित दिहाड़ै धन वरी साहे लए लिखाए।
मालक जी कन्नी सुणीदा मुहु दिखाले आए।।

शब्दार्थ : धन–स्त्री, वरी–ब्याही जाएगी, साहे–पहले से शादी का निश्चित समय, मालक–मौत का देवता, कन्नी–कानों से

अर्थ : फरीद जी का मत है कि जिस दिन (जो पहले से ही निश्चित है) जीव स्वरुप स्त्री परमात्मा संग ब्याही जाएगी अर्थात् जब अन्तिम समय आयेगा तो मौत का देवता जिसके अस्तित्व के बारे में अक्सर कानों से सुना जाता है, जीवात्मा के पति रुप में दिखाई देगा।

जिन्दु वहुटी मरणु वर लै जासी परणाए।
आपण हथ्थी जोलकै कै गल लगै धाए।।

शब्दार्थ : जिन्दु–जान, वहुटी–दुल्हन, मरणु–मृत्यु, वर–दूल्हा, परणाए–ब्याहकर, जोलकै–विदा करके, कै–किसके, धाए–दौड़कर

अर्थ : इस श्लोक में बाबा फरीद अपने शरीर से यह प्रश्न पूछते हैं कि जब आत्मा स्वरुप दुल्हन को मृत्यु स्वरुप दूल्हा विवाह कर ले जायेगा तो वह उसे अपने हाथों से विदा करके अपने आप को जीवित रखने के लिए दौड़कर किसके गले लगेगा। (आत्मा से बिछड़ने के बाद यह सुन्दर काया अनाथ हो जाती है,

तब इसमें कोई सामर्थ्य, कोई चेतना नहीं रहती।)

वालहु निकी पुरसलात कन्नी न सुणी आए।
फरीदा किड़ी पवन्दीई खड़ा न आप मुहाए।।

शब्दार्थ : वालहु–बाल से भी, निकी–छोटी, पुरसलात–नर्क की नदी का पुल, किड़ी–आवाज़ें, पवन्दीई–पड़ रही हैं, मुहाए–ठगे जाना।

अर्थ : बाबा फरीद कहते हैं कि नर्क की नदी का पुल बाल से भी बारीक है। हम उस नदी की नाद को अपने कानों से नहीं सुन सकते। संतजनों की आवाज़ें जो तेरे कानों में चेतावनी के रुप में पड़ रही हैं, उन पर अमल कर और यूँ ही ठगा मत जा। (अनजाने ही नर्क का भागी मत बन।)

– राजेश भाटिया, 72/22–बी, मंडी गोबिन्दगढ़।

# तीर्थ यात्रा : तुंगनाथ

शिव के धामों में केदारनाथ का बहुत महत्व है। हिमालय पर गढ़वाल क्षेत्र में पाँच केदार हैं : 1.केदारनाथ, 2.मध्यमेश्वर, 3.तुंगनाथ, 4.रुद्रनाथ, 5.कल्पेश्वर। तुंग का अर्थ है पर्वत, नाथ का अर्थ स्वामी। इस तरह तुंगनाथ का अर्थ हुआ पर्वतों का स्वामी। भोलेनाथ का यह मन्दिर समुद्र तट से 12272 फीट की ऊँचाई पर स्थित है।

रास्ता : हरिद्वार से चमोली 224 किलोमीटर है। चमोली से 40 कि.मी. गोपेश्वर, गोपेश्वर से 40 कि.मी. कोयटा है। कोयटा से 4 कि.मी. की पैदल चढ़ाई है।

ठहरने का प्रबन्ध : कोयटा के होटलों में 100 रुपये बैड के हिसाब से कमरे मिल जाते हैं। 25–30 रुपये एक व्यक्ति के खाने का खर्च आता है।

चढ़ाई : तुंगनाथ को भारत का सबसे ऊँचा शिवालय माना जाता है। 4 कि.मी. की खड़ी चढ़ाई में विश्राम के लिए थोड़ी–थोड़ी दूर बैंच बने हुये है तथा रास्ते में दुकानें भी हैं। चढ़ाई के लिए दो–तीन सौ में घोड़े भी मिल जाते हैं। रास्ते में पानी का प्रबन्ध नहीं है इसलिए पानी अवश्य साथ रखें। रेनसूट या छाता भी अवश्य साथ रखें।

पूजा : यहां भैरवनाथ, पार्वती, गणेश, तुंगेश्वर, नंदी की इसी क्रम में पूजा की जाती है।

परिक्रमा : मंदिर परिक्रमा में नंदी, जलकुण्ड, उदककुण्ड, रुद्रनाथ, पित्रशिला एवं

भूतनाथ की अर्चना की जाती है।

अन्य स्थल : यहां से 2 कि.मी दूर चन्द्रशिला है, जहां चन्द्रमा ने शिव आराधना की थी। लगभग 2 कि.मी. दूर ही रावण शिला है जहां रावण ने शिव आराधना की थी।

इतिहास : यह मंदिर पाण्डवों द्वारा स्थापित है। आदि शंकराचार्य ने इसकी खोजकर जीर्णोद्वार किया। माना जाता है कि यहां दर्शन करने से जन्मभर के पाप मिट जाते हैं।

—प्रो. आर.के. शर्मा

# श्रीकृष्ण जन्म

## (श्रीमद्भागवद् पर आधारित –दशम स्कन्ध/तीसरा अध्याय)

श्रीकृष्ण के जन्म के समय रोहिणी नक्षत्र था। आकाश में सभी नक्षत्र, ग्रह, तारे शान्त और सौम्य हो रहे थे। समस्त सृष्टि का निर्माण भगवान ने ही किया है। भगवान अप्रत्यक्ष रुप से इस सृष्टि में विद्यमान रहते हैं। लेकिन जब भगवान प्रत्यक्ष रुप से इस सृष्टि में प्रकट होने वाले हों तो समस्त सृष्टि का आन्नदित होना स्वाभाविक ही है। भगवान ने हमको बनाया है यह हम जानते हैं, भगवान हममें विद्यमान हैं यह भी हम जानते हैं, लेकिन क्या कभी हमनें भगवान को देखा है। अगर देखा है तो क्या स्मरण है कि भगवान किस तरह दिखाई देते हैं। बहुधा तो भगवान अमूर्त्त रुप में ही रहते हैं। जब कभी भगवान मूर्त्त रुप में आने का विचार कर लें तो सारी सृष्टि ही उत्सुक हो जाती है। जिस समय भगवान कृष्ण के प्राकट्य का समय था उस समय समस्त सृष्टि शांत तथा प्रसन्न भाव से उनके आगमन की प्रतीक्षा कर रही थी। दिशायें स्वच्छ तथा निर्मल थी। अगर दिशायों में किसी तरह का मालिनय आ जाता तो कदाचित् दिशायें तथा उनके स्वामी भगवान का दर्शन न कर सकते। इस वजह से दिशायें बहुत शांत भाव से भगवान के आने की प्रतीक्षा कर रही थी। निर्मल आकाश में तारे जगमगा रहे थे। आकाश स्वयं तो भगवान के दर्शन करना चाह रहा था साथ ही तारे भी भगवान के दर्शनलाभ से वंचित नहीं होना चाहते थे। इसलिए शायद तारों ने

आकाश से कहा होगा कि, 'हे आकाश! तुम निर्मल तथा स्वच्छ बन जाओ ताकि पृथ्वी पर भगवान का दर्शन करते समय हमें किसी तरह का व्यवधान उत्त्पन्न न हो। पृथ्वी के भी बड़े–छोटे नगर, गांव, बस्तियां, हीरे–स्वर्ण की खानें मंगलमय हो रही थी। यह संसार भगवान का ही रुप है। संपन्नता भगवान का ऐश्वर्य है। भगवान की अनन्त विभूतियों में से धन–संपदा भी एक विभूति है। सृष्टि की सारी संपदा भगवान के ही आश्रित है। जब भगवान मूर्त्तरुप में अपनी संपदा के मध्य आने तथा इसका उपभोग करने के इच्छुक हों तो इस समस्त संपदा का गौरवान्वित तथा प्रसन्न होना स्वाभाविक ही है। नदियों का जल निर्मल हो रहा था। रात्रि के समय भी सरोवरों में कमल खिल रहे थे। वनों में वृक्षों की पंक्तियां रंग–बिरंगे पुष्पगुच्छों से लद गई थी। हमनें किसी विशेष अतिथि का स्वागत करना होता है तो फूलों से उसका स्वागत करते हैं, लेकिन उनके बारे में क्या कहें जिनके स्वागत के लिए फूल स्वयं उत्सुक हों। फूल स्वयं खिलकर झूम रहे थे। प्रभु आने वाले हैं, इसी बात से वे आन्नदित थे। इस पृथ्वी पर प्रभु की अद्‌भुत लीलायें होगी, कदाचित् प्रभु हम पर एक दृष्टि डाल दें या फिर हमें अपने श्रृंगार के लिए ही उपयोग कर लें, यही उनकी आशा थी। पक्षी चहक रहे थे, भौरें गुनगुना रहे थे। उस समय शीतल–मंद–सुगन्ध वायु बह रही थी। वायु के तीनों श्रेष्ठ गुण उस समय प्रकट हो रहे थे। वायु में शीतलता थी जो शरीर को आराम देने वाली है। मंद गति से बहते हुये वायु सुगन्ध बिखेर रही थी,

जिससे कि सृष्टि उल्लसित हो रही थी।

ब्राह्मणों के यज्ञों की सदा जलने वाली अग्नियां जो कंस के अत्याचारों से बुझ गई थी वे भी अपने आप जल उठी। भगवान पृथ्वी पर धर्म स्थापना तथा अपने भक्तों को सुख देने आ रहे थे। इसी कारण भगवान के आने के समय ही धर्मवृद्धि के लक्षण प्रकट होने लगे। संत पुरुष तो यही चाहते हैं कि असुरों की वृद्धि न हो। इसके लिए संत असुर वृत्ति वाले लोगों का नहीं मारते बल्कि उनकी कुत्सित प्रवृत्तियों को दूर करते हैं। जबकि असुर प्रवृत्ति वाले संतों पर अत्याचार करते हैं। उस समय असुरों के संतों पर अत्याचार चरम सीमा तक पहुंच गये थे। संत तो भगवान से ही पुकार करते हैं और भगवान उनकी पुकार सुनते भी हैं। भगवान जब इस पृथ्वी पर आते हैं तो उसका मुख्य उद्देश्य असुरों की समाप्ति नहीं होता बल्कि संतों की पुकार उन्हें पृथ्वी पर खींच ले आती है। असुरों को तो भगवान अपनी इच्छामात्र से भी समाप्त कर सकते हैं लेकिन संतों की भक्तिभावना का समुचित फल भगवान स्वयं इस पृथ्वी पर आकर देते हैं। अब भगवान आ रहे थे तो संतों के हृदय अति आन्नदित हो रहे थे।

उस समय स्वर्ग में देवताओं की दुदुंभियां बजने लगी। किन्नर, गन्धर्व मधुर स्वर में गाने लगे। सिद्ध, चारण भगवान के गुणों का गान करने लगे। अप्सरायें नाचने लगी। देवता तथा ऋषि–मुनि पुष्पवर्षा करने लगे। जल से भरे हुये मेघ समुद्र के पास जाकर धीरे–धीरे गर्जना करने लगे। मानों मेघ समुद से

कह रहे हों कि हे जलनिधे! तुम्हारी कृपा से ही हम जल से परिपूर्ण हैं। भगवान तुममें निवास करते हैं। हम पर भी कुछ ऐसी कृपा करो कि भगवान हममें भी निवास करने लगें। उस समय घोर अन्धकार था, जैसे पाप और अधर्म अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गया हो। सबके हृदय में प्रकाशित होने वाले भगवान उस समय देवरुपिणी देवकी के गर्भ से उत्त्पन्न हुये। जैसे चन्द्रमा अपनी सम्पूर्ण कलाओं के साथ उदित होता है उसी तरह भगवान भी कोमलमय कान्ति के साथ प्रकट हुये। जय श्री कृष्ण!

वासुदेवजी ने देखा कि अद्‌भुत बालक प्रकट हुआ है। बालक के नेत्र कमल के समान सुन्दर, कोमल तथा विशाल हैं। बालक अपने दिव्य रुप में था। उसके चार हाथ थे। चारों सुन्दर हाथों में शंख, चक्र, गदा और कमल लिये हुये, वक्षःस्थल पर श्रीवत्स का चिन्ह, गले में कौस्तुभमणि झिलमिला रही थी। वर्षाकाल के मेघ की तरह श्याम वर्ण के प्रभु के शरीर पर पीले रंग के वस्त्र शोभा पा रहे थे। अमूल्य वैदूर्यमणि के मुकुट तथा कुंडल शोभा पा रहे थे। सुन्दर, काले, घुंघराले बाल सूर्य की किरणों की तरह चमक रहे थे। भगवान के बाल काले थे, अन्धकार का रंग भी काला होता है, फिर भी वे प्रकाशित हो रहे थे। भगवान की ऐसी ही महिमा है। विरोधी गुण, स्वभावादि तो जीवों के लिए है, भगवान के लिए तो सब कुछ अनुकुल है। जो भगवान का है वह स्वयं ही शोभायमान हो जाता है। अगर भगवान के काले बाल भी सूर्य की भांति प्रकाशित

हो रहे थे तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिये। कमर में सुंदर करघनी, बाहों में बाजूबंद और कलाईयों में कंगन शोभायमान हो रहे थे। बालक के अंग–अंग से दिव्य कांति झलक रही थी। आप सोचेंगे छोटा सा बालक इतने गहने कैसे पहन सकता है। अगर हमनें कभी बालकृष्ण की झांकी तैयार करनी हो तो छोटे बालक को एक मुकुट पहनाने में ही बहुत मुश्किल होती है। लेकिन वे बालक तो स्वयं भगवान थे। ये सब आभूषण तो उनके परम ऐश्वर्य का प्रतीक हैं। भगवान देवकी और वासुदेव को अपना दिव्यरुप दिखला रहे थे। वासुदेवजी ने देखा कि स्वयं भगवान मेरे पुत्र के रुप में आये हैं तो वे आश्चर्यचकित और आन्नदित हो गये। वासुदेव श्रीकृष्ण का जन्मोत्सव बहुत धूमधाम से मनाना चाह रहे थे लेकिन वे कारावास में थे। वासुदेवजी ने तुरन्त उसी समय ब्राह्मणों को दस हजार गायें देने का संकल्प कर लिया। धर्मात्मा पुरुष ही किसी को कुछ दे सकते हैं या देने का संकल्प कर सकते हैं।

अपनी बुद्धि को स्थिर करके वासुदेवजी ने श्रीकृष्ण के चरणों में अपना सिर झुका लिया। चाहे सांसारिक रुप से वासुदेवजी श्रीकृष्ण के पिता हैं लेकिन वास्तविक रुप से भगवान सबके पिता हैं। इसी कारण वासुदेवजी ने भगवान को प्रणाम किया। उस समय वासुदेवजी बोले, 'मैं समझ गया हूं कि आप प्रकृति से अतीत परमपुरुष हैं। अनुभव और आन्नद ही आपका स्वरुप हैं। आप आन्नदमयी ही हो जिसका मात्र अनुभव ही किया जा सकता है। आपके स्वरुप को शब्दों

में वर्णित नहीं किया जा सकता। आप सबके साक्षी हो। सृष्टि के आरम्भकाल में आप अपनी प्रकृति से त्रिगुणमयी सृष्टि को उत्त्पन्न करते हो। इस सृष्टि में प्रविष्ट न होने पर भी आप प्रविष्ट के समान जान पड़ते हो। आप सर्वशक्तिमान और सबके स्वामी हो। जगत् की रक्षा के लिए ही आपने मेरे घर अवतार लिया है। आज करोड़ों असुरों ने राजाओं का नाम धारण कर रखा है। पहले तो असुर अपने भयानक रुप में घूमते थे लेकिन आजकल असुर मनुष्य राजाओं के वेष में अधर्म फैला रहे हैं। इन असुरों ने विशाल सेनायें रखी हुई हैं। आप उन सबका संहार करने के लिए उत्त्पन्न हुये हो। हे देवताओं के भी आराध्य प्रभु! यह कंस बड़ा दुष्ट है। जब इसे पता चला कि आपका अवतार हमारे घर होने वाला है तो इसने हमें बंदी बना लिया तथा आपसे पहले उत्त्पन्न आपके भाईयों को मार डाला। उसके दूत उसको आपके उत्त्पन्न होने का समाचार सुनायेंगे तो वह हाथों में शस्त्र लिये आपको भी मारने आ जायेगा।

देवकी ने भी देखा कि मेरे पुत्र में पुरुषोत्तम भगवान के सभी लक्षण विद्यमान हैं। पहले तो देवकी को कंस से कुछ भय लगा लेकिन फिर वे मुस्कुराकर बोली, प्रभो! जो अव्यक्त है, सबका कारण है, ब्रह्म, ज्योतिस्वरुप है, सब गुणों से रहित, विकारहीन है, विशुद्ध सत्ता है, वही बुद्धि के प्रकाशक स्वयं विष्णु आप हैं। ब्रह्मा की आयु पूरी होने पर, सारे लोक नष्ट हो जाने पर, सब तत्वों के अपने कारण में लीन हो जाने पर एकमात्र आप ही शेष रहते हैं, इसी

कारण आपका नाम 'शेष' भी है। निमेष से लेकर वर्ष तक काल अनेक भागों में विभाजित है। काल की चेष्टा से ही यह जगत् सचेष्ट हो रहा है, इसकी कोई सीमा नहीं है। लेकिन यह काल भी आपकी लीलामात्र है। आप सर्वशक्तिमान और परमकल्याण के आश्रय हैं। मैं आपकी शरण लेती हूँ। प्रभु! यह जीव मृत्युग्रस्त हो रहा है। मृत्यु से भयभीत होकर यह जीव लोक–लोकान्तरों में भटकता है लेकिन इसे कोई ऐसी जगह नहीं मिलती जहां यह निर्भय होकर रह सके। आज इसे बड़े भाग्य से आपकी शरण मिली है तथा यह निश्चिन्त हो गया है। स्वयं मृत्यु भी आपसे भयभीत होकर भाग रही है। प्रभु! आप भक्तभयहारी हैं। हम दुष्ट कंस से बहुत भयभीत हैं, हमारी रक्षा कीजिये। आपका यह चतुर्भुज रुप दिव्य ध्यान की वस्तु है। इसे केवल मांस–मज्जा रुपी शरीर पर दृष्टि रखने वाले देहाभिमानी पुरुषों के सामने प्रकट मत कीजिये। मधुसूदन! पापी कंस को यह पता न चले कि आप मेरे गर्भ से प्रकट हुये हो। मेरा धैर्य टूट रहा है। मैं कंस से बहुत डर रही हूँ। विश्वात्मन! आपका रुप अलौकिक है। आप शंख, चक्र, गदा और कमल की शोभा से युक्त अपना यह शरीर छिपा लीजिये। प्रलय के समय आप सम्पूर्ण विश्व को अपने शरीर में वैसे ही स्वाभाविक रुप से धारण कर लेते हैं जैसे मनुष्य अपने शरीर में रहनेवाले छिद्ररुप आकाश को। वही परमपुरुष परमात्मा आप मेरे गर्भवासी हुए, यह आपकी अद्भुत मनुष्य लीला नहीं तो और क्या है?

भगवान बोले, देवि! स्वायम्भुव मन्वन्तर में जब तुम्हारा जन्म हुआ था उस समय तुम्हारा नाम पृश्नि था और वासुदेव सुतपा नाम के प्रजापति थे। तुम दोनों के हृदय बड़े ही शुद्ध थे। जब ब्रह्माजी ने तुम्हे सन्तान उत्त्पन्न करने की आज्ञा दी तो तुम कठिन, इन्द्रियों का दमन करने वाली, उत्कृष्ट तपस्या में लग गये। तुम दोनों ने गर्मी, सर्दी, वर्षा सब कुछ सहन किया तथा प्राणायाम से अपने मन के मैल धो डाले। तुम दोनों कभी सूखे पत्ते तो कभी वायु पीकर भी रह जाते। तुम्हारा चित्त बड़ा शान्त था। इस तरह घोर तप करते हुए तुम्हे देवताओं के बारह हजार वर्ष व्यतीत हो गये। उस समय मैं तुम दोनों से बहुत प्रसन्न हुआ। वर देने के लिए मैं प्रकट हुआ तथा मनचाहा वर मांगने के लिए कहा। उस समय तुमने मेरे जैसा पुत्र मांगा। उस समय तुम्हारा विषय–भोगों से कोई सम्बन्ध नहीं था। इस कारण तुम सदा मुक्त अनुभव करते थे तथा तुममें मुक्ति की कामना नहीं थी। विषय–भोगों में पड़ मेरी माया से मोहित होकर जीव मुक्ति की ओर भागता है। किन्तु तुम तो पहले से ही मुक्त अनुभव करते थे इसलिए तुमने मेरे जैसा पुत्र मांगा। वर देकर मैं चला गया तथा तुम भी सफल मनोरथ होकर विषयभोग करने लगे। बाद में मैनें देखा कि संसार में मुझ जैसा तो कोई है ही नहीं, इसलिए मैंने स्वयं तुम्हारे गर्भ से जन्म लिया तथा पृश्निगर्भ नाम से विख्यात हुआ। दूसरे जन्म में तुम दोनों अदिति तथा कश्यप हुए। उस समय भी मैं तुम्हारा पुत्र हुआ। उस समय मेरा नाम उपेन्द था। शरीर छोटा होने के कारण

मुझे वामन भी कहते थे। अब तीसरे जन्म में मैं फिर तुम्हारा पुत्र हुआ हूँ। मैनें तुम्हे अपना यह रुप इसलिए दिखलाया है कि तुम्हे मेरे अवतारों का स्मरण हो जाये। यदि मैं तुम्हे अपना यह रुप न दिखलाता तो केवल मनुष्य शरीर से तुम्हे मेरे अवतार की पहचान न हो पाती। तुम दोनों मेरे प्रति वात्सल्य–स्नेह तथा ब्रह्मभाव रखना।

इतना कहकर भगवान चुप हो गये। उन्होंने अब साधारण रुप धारण कर लिया। भगवान की प्रेरणा से वासुदेवजी को बन्दीगृह से बाहर निकलने की इच्छा हुई। उसी समय नंदपत्नी यशोदा के गर्भ से योगमाया का जन्म हुआ। उसी योगमाया के प्रभाव से सब द्वारपालों, नगरनिवासियों की चेतना लुप्त हो गई। बंदीगृह के द्वारों पर बड़े–बड़े ताले लगे हुए थे, लेकिन जैसे ही वासुदेवजी श्रीकृष्ण को लेकर द्वारों के पास गये वे अपने–आप खुलते चले गये। बादल भगवान के स्वागत में धीरे–धीरे फुहार कर रहे थे। वर्षाऋतु के कारण यमुनाजी में उफान आया हुआ था। शेषजी अपना फल फैलाये श्रीकृष्ण को वर्षा से बचा रहे थे। वासुदेवजी ने यमुनाजी में प्रवेश किया तो पानी उनके गले से भी ऊपर आ गया, मानों यमुनाजी श्रीकृष्ण की चरण वन्दना का प्रयास कर रही थी। यमुना के जल ने जब टोकरी में रखे बालकृष्ण के पांवों को छुआ तो यमुनाजी ने स्वयं ही श्रीकृष्ण को मार्ग दे दिया तथा वासुदेवजी सरलता से यमुना के पार नंदजी के घर पहुंच गये। योगमाया के प्रभाव से वहां भी सब गोप–गोपियां नींद

में अचेत पड़े थे। वासुदेवजी ने श्रीकृष्ण को शैया पर लिटा दिया तथा नवजात कन्या को लेकर बंदीगृह में वापिस आ गये। उस कन्या को देवकी की शैया पर सुलाकर उन्होंने पुनः पहले की तरह बेड़िया डाल ली। सब द्वार अपने–आप बंद हो गये। उधर यशौदा को यह तो पता था कि संतान हुई है, लेकिन पुत्र या पुत्री इसके बारे में उन्हें मालूम नहीं था, योगमाया ने उन्हें अचेत जो कर दिया था। भगवान अद्‌भुत हैं, उनके जन्म–कर्म की कथायें भी अद्‌भुत हैं।

भगवान परम स्वतन्त्र तथा अपनी ही इच्छा से चलने वाले हैं। भगवान के लिए कोई बन्धन नहीं है, फिर भी भगवान ने बंदीगृह में जन्म लेना स्वीकार किया। बंदीगृह में जन्म लेकर भी भगवान बन्धनों से सर्वदा मुक्त रहे। इससे भगवान ने हमें संदेश दिया कि हम भी बन्धनों से मुक्त हो सकते हैं। जब तक हम बन्धनों को स्वीकार करते जाते हैं तो बन्धन और भी दृढ़ होते जाते हैं। लेकिन मुक्त होने की दृढ़ इच्छा से भगवान की शरण लेकर जब हम बन्धनों को खोलते हैं वे स्वयं ही खुलते जाते हैं। वासुदेवजी ने स्वयं कोई प्रयास नहीं किया। समस्त द्वार, ताले भगवान की इच्छा से ही खुलते गये। हमें भी कोई प्रयास करने की आवश्यकता नहीं है। मात्र अपने को भगवान की इच्छा पर ही छोड़ना है, यही हमारा प्रयास है, जो कि हमें बन्धनों से मुक्त कर सकता है। बन्धन क्या हैं? हमारी इच्छायें ही हमारे बन्धन हैं। आज हम एक इच्छा की पूर्ति चाहते हैं तो उसको पूरा करना हमारे लिए बन्धन है। जब तक हम इच्छापूर्ति

के बन्धन से मुक्त नहीं होते शांति नहीं मिलती। एक इच्छाबन्धन के खुलते ही दूसरा इच्छाबन्धन हमारे सामने आ खड़ा होता है। फिर हम उसे खोलने लगते हैं। इसी तरह हमारा समय व्यतीत हो जाता है। हमें अपने सम्पूर्ण बन्धनों सहित भगवान की शरण में चले जाना हैं तथा स्तुति करनी है 'भगवान मैं तथा मेरे समस्त बन्धन आपकी शरण में हैं। आप चाहे मुझे बन्धनों से मुक्त कर दो, चाहे और ज्यादा बन्धनों में डाल दो यह आपकी इच्छा है।' भगवान हमें बन्धनमुक्त ही करेंगे यह भी निश्चित है। लेकिन प्रार्थना हमें निरपेक्ष भाव से ही करनी है क्योंकि भगवान हमारी इच्छा से नहीं बल्कि स्वयं अपनी निरपेक्ष इच्छा से चलते हैं।

अपने प्रत्यक्ष, साकार रुप में भगवान युगों के बाद प्रकट होते हैं, लेकिन अप्रत्यक्ष रुप से तो भगवान सदैव विद्यमान हैं। भगवान नित नये हैं, सदैव प्रकट रहते हैं, सबसे पुराने भी हैं तथा प्रकट होकर भी अप्रकट हैं। जो भगवान को पाना चाहता है, भगवान की शरण में जाता है उसके लिए भगवान सदैव प्रकट हैं। भगवान को प्रकट होने के लिए कोई प्रयास नहीं करना पड़ता, हमें भगवान को देखने के लिए प्रयास करना पड़ता है। जन्म–मरण से परे होने पर भी भगवान हमारे शुभ विचारो, शुभ कर्मों के रुप में सदैव जन्म लेते हैं। भगवान अनन्तरुप जो ठहरे चाहे किसी रुप में अपनी सत्ता का अनुभव करवा दें। जय श्री कृष्ण।

# भगवान के संदेश का प्रचार करें

.... त्याग को निवृत्ति तथा प्राप्ति को प्रवृत्ति कहते हैं। प्रवृत्ति के साथ निवृत्ति सदैव जुड़ी हुई है। निवृत्ति का महत्व प्रवृत्ति से भी ज्यादा है, वह इसलिए कि निवृत्ति एक स्वतः प्रक्रिया है। प्रवृत्ति के लिए प्रयत्न आवश्यक हो सकता है लेकिन निवृत्ति तो अपने आप हो जानी है। लेकिन इसमें भी भेद है। जिस निवृत्ति के लिए प्रयत्न करना पड़े उसका महत्व और भी ज्यादा है जैसे अपने में कोई अवगुण है उससे निवृत्ति चाहते हैं, दुखों से निवृत्ति चाहते हैं। सुखों में प्रवृत्ति तथा दुखों से निवृत्ति मानवीय स्वभाव का अंग है। ज्यादा ध्यान प्रवृत्ति की ओर रहता है जबकि वास्तविक लाभ निवृत्ति में छिपे हैं। हम हर रोज जो करते हैं, देखते हैं, सुनते हैं, सोचते हैं अगर वह सब सदैव हमारी स्मृति में बना रहे तो जीवन बहुत मुश्किल हो जायेगा। सुख से ज्यादा हम दुखों को भूलते जाते हैं। हरेक को जीवन की छोटी–छोटी सुखद घटनायें तो याद रहती हैं, उनको स्मरण कर आनन्द का अनुभव होता है लेकिन दुखद, विपरीत घटनायें हर कोई भूलना चाहता है। यह प्रक्रिया स्वभाव में बिना प्रयास के स्वतः ही चलती रहती है। इसमें मानव का कल्याण तथा सुख दोनों छिपे हैं। बिना प्रयास के त्याग करने से इतना लाभ मिलता है और अगर त्याग के लिए प्रयास किये जायें तो कितना सुख मिल सकता है। त्याग के लिए प्रयास भी ज्ञान का आश्रय ले करना उचित है।... (श्रीमद्भगवद्गीता शुद्धस्वरुप के चौथे अध्याय 'ज्ञानकर्मसंन्यास

योग' के माहात्मय से)

श्रीकृष्णजन्माष्टमी के अवसर पर अपने मित्रों, सम्बन्धियों के लिए श्रीमद्भगवद्गीता से अच्छा उपहार और क्या होगा। इस जन्माष्टमी पर श्रीमद्भगवद्गीता की प्रतियां बाटें तथा पुण्य के भागी बनें। आप हमसे भी गीताजी की प्रतियां ले सकते हैं, जिसका विवरण इस प्रकार है :

पुस्तक : श्रीमद्भगवद्गीता, मूल संस्कृत श्लोकों तथा सरल हिन्दी अर्थ और महात्मय सहित। पृष्ठ : 144, अनुवाद एवम् महात्मय : महेश बातिश।

मूल्य : मात्र 10/– रुपये (मुख्य पृष्ठ पर आपके नाम की प्रिंटिंग सहित)

कम से कम 50 पुस्तकें।

# तिथि विचार

## 11 अगस्त 2005 से 10 सितम्बर 2005 तक

## विक्रमी संवत 2062, शक संवत 1927, वर्षा ऋतु, सूर्य दक्षिणायण

11 अगस्त 2005 दिन गुरुवार, शुक्लपक्ष । षष्ठी तिथि रात्रि 8:00 तक रहेगी। सूर्योदय 5:51 पर होकर सांय 7:05 पर सूर्यास्त होगा, प्रविष्टी श्रावण 27 तथा शक श्रावण की तिथि 20 है। गोस्वामी तुलसीदास जयन्ती।

12 अगस्त 2005 दिन शुक्रवार, शुक्लपक्ष। सप्तमी तिथि रात्रि 8:15 तक रहेगी। सूर्योदय 5:51 पर होकर सांय 7:04 पर सूर्यास्त होगा, प्रविष्टी श्रावण 28 तथा शक श्रावण की तिथि 21 है।

13 अगस्त 2005 दिन शनिवार, शुक्लपक्ष। अष्टमी तिथि रात्रि 7:47 तक रहेगी। सूर्योदय 5:52 पर होकर सांय 7:03 पर सूर्यास्त होगा, प्रविष्टी श्रावण 29 तथा शक श्रावण की तिथि 22 है। श्री दुर्गाष्टमी।

14 अगस्त 2005 दिन रविवार, शुक्लपक्ष। नवमी तिथि सांय 6:32 तक रहेगी। सूर्योदय 5:52 पर होकर सांय 7:02 पर सूर्यास्त होगा, प्रविष्टी श्रावण 30 तथा शक श्रावण की तिथि 23 है।

15 अगस्त 2005 दिन सोमवार, शुक्लपक्ष। दशमी तिथि सांय 4:32 तक रहेगी। सूर्योदय 5:53 पर होकर सांय 7:01 पर सूर्यास्त होगा, प्रविष्टी श्रावण 31 तथा

शक श्रावण की तिथि 24 है।

16 अगस्त 2005 दिन मंगलवार, शुक्लपक्ष। एकादशी तिथि दोपहर 1:52 तक रहेगी। सूर्योदय 5:54 पर होकर सांय 7:00 पर सूर्यास्त होगा, प्रविष्टी भाद्रपद 1 तथा शक श्रावण की तिथि 25 है। पवित्रा एकादशी व्रत।

17 अगस्त 2005 दिन बुधवार, शुक्लपक्ष। द्वादशी तिथि प्रातः 10:39 तक रहेगी। सूर्योदय 5:54 पर होकर सांय 6:59 पर सूर्यास्त होगा, प्रविष्टी भाद्रपद 2 तथा शक श्रावण की तिथि 26 है। प्रदोष व्रत।

18 अगस्त 2005 दिन गुरुवार, शुक्लपक्ष। त्रयोदशी तिथि प्रातः 7:03 तदन्तर चतुर्दशी 19 की प्रातः 3:13 तक रहेगी, अतएव् चतुर्दशी तिथिक्षय। सूर्योदय 5:55 पर होकर सांय 6:58 पर सूर्यास्त होगा, प्रविष्टी भाद्रपद 3 तथा शक श्रावण की तिथि 27 है।

19 अगस्त 2005 दिन शुक्रवार, शुक्लपक्ष। श्रावणी पूर्णिमा रात्रि 11:21 तक रहेगी। सूर्योदय 5:55 पर होकर सांय 6:57 पर सूर्यास्त होगा, प्रविष्टी भाद्रपद 4 तथा शक श्रावण की तिथि 28 है। श्री सत्यनारायण व्रत, रक्षाबन्धन, पंचक आरम्भ।

20 अगस्त 2005 दिन शनिवार, कृष्णपक्ष आरम्भ। एकम् तिथि रात्रि 7:38 तक रहेगी। सूर्योदय 5:56 पर होकर सांय 6:56 पर सूर्यास्त होगा, प्रविष्टी भाद्रपद 5 तथा शक श्रावण की तिथि 29 है।

21 अगस्त 2005 दिन रविवार, कृष्णपक्ष। द्वितीया तिथि सांय 4:13 तक रहेगी। सूर्योदय 5:56 पर होकर सांय 6:55 पर सूर्यास्त होगा, प्रविष्टी भाद्रपद 6 तथा शक श्रावण की तिथि 30 है।

22 अगस्त 2005 दिन सोमवार, कृष्णपक्ष। तृतीया तिथि दोपहर 1:16 तक रहेगी। सूर्योदय 5:57 पर होकर सांय 6:53 पर सूर्यास्त होगा, प्रविष्टी भाद्रपद 7 तथा शक श्रावण की तिथि 31 है। श्री गणेश चतुर्थी व्रत।

23 अगस्त 2005 दिन मंगलवार, कृष्णपक्ष। चतुर्थी तिथि प्रातः 10:57 तक रहेगी। सूर्योदय 5:58 पर होकर सांय 6:52 पर सूर्यास्त होगा, प्रविष्टी भाद्रपद 8 तथा शक भाद्रपद की तिथि 1 है। पंचक समाप्त, शरद ऋतु आरम्भ।

24 अगस्त 2005 दिन बुधवार, कृष्णपक्ष। पंचमी तिथि प्रातः 9:21 तक रहेगी। सूर्योदय 5:58 पर होकर सांय 6:51 पर सूर्यास्त होगा, प्रविष्टी भाद्रपद 9 तथा शक भाद्रपद की तिथि 2 है।

25 अगस्त 2005 दिन गुरुवार, कृष्णपक्ष। षष्ठी तिथि प्रातः 8:32 तक रहेगी। सूर्योदय 5:59 पर होकर सांय 6:50 पर सूर्यास्त होगा, प्रविष्टी भाद्रपद 10 तथा शक भाद्रपद की तिथि 3 है।

26 अगस्त 2005 दिन शुक्रवार, कृष्णपक्ष। सप्तमी तिथि प्रातः 8:30 तक रहेगी। सूर्योदय 5:59 पर होकर सांय 6:49 पर सूर्यास्त होगा, प्रविष्टी भाद्रपद 11 तथा शक भाद्रपद की तिथि 4 है। श्रीकृष्ण जन्माष्टमी।

27 अगस्त 2005 दिन शनिवार, कृष्णपक्ष। अष्टमी तिथि प्रातः 9:13 तक रहेगी। सूर्योदय 6:00 पर होकर सांय 6:48 पर सूर्यास्त होगा, प्रविष्टी भाद्रपद 12 तथा शक भाद्रपद की तिथि 5 है।

28 अगस्त 2005 दिन रविवार, कृष्णपक्ष। नवमी तिथि प्रातः 10:35 तक रहेगी। सूर्योदय 6:00 पर होकर सांय 6:47 पर सूर्यास्त होगा, प्रविष्टी भाद्रपद 13 तथा शक भाद्रपद की तिथि 6 है। श्री गुग्गा नवमी।

29 अगस्त 2005 दिन सोमवार, कृष्णपक्ष। दशमी तिथि दोपहर 12:27 तक रहेगी। सूर्योदय 6:01 पर होकर सांय 6:45 पर सूर्यास्त होगा, प्रविष्टी भाद्रपद 14 तथा शक भाद्रपद की तिथि 7 है।

30 अगस्त 2005 दिन मंगलवार, कृष्णपक्ष। एकादशी तिथि दोपहर 2:40 तक रहेगी। सूर्योदय 6:02 पर होकर सांय 6:44 पर सूर्यास्त होगा, प्रविष्टी भाद्रपद 15 तथा शक भाद्रपद की तिथि 8 है। अजा एकादशी व्रत।

31 अगस्त 2005 दिन बुधवार, कृष्णपक्ष। द्वादशी तिथि सांय 5:05 तक रहेगी। सूर्योदय 6:02 पर होकर सांय 6:43 पर सूर्यास्त होगा, प्रविष्टी भाद्रपद 16 तथा शक भाद्रपद की तिथि 9 है। प्रदोष व्रत।

1 सितम्बर 2005 दिन गुरुवार, कृष्णपक्ष। त्रयोदशी तिथि रात्रि 7:33 तक रहेगी। सूर्योदय 6:03 पर होकर सांय 6:42 पर सूर्यास्त होगा, प्रविष्टी भाद्रपद 17 तथा शक भाद्रपद की तिथि 10 है।

2 सितम्बर 2005 दिन शुक्रवार, कृष्णपक्ष। चतुर्दशी तिथि रात्रि 9:58 तक रहेगी। सूर्योदय 6:03 पर होकर सांय 6:41 पर सूर्यास्त होगा, प्रविष्टी भाद्रपद 18 तथा शक भाद्रपद की तिथि 11 है।

3 सितम्बर 2005 दिन शनिवार, कृष्णपक्ष समाप्त। भाद्रपद अमावस रात्रि 12:14 तक रहेगी। सूर्योदय 6:04 पर होकर सांय 6:39 पर सूर्यास्त होगा, प्रविष्टी भाद्रपद 19 तथा शक भाद्रपद की तिथि 12 है। शनैश्चरी अमावस।

4 सितम्बर 2005 दिन रविवार, शुक्लपक्ष आरम्भ। एकम् तिथि मध्यरात्रि 2:16 तक रहेगी। सूर्योदय 6:04 पर होकर सांय 6:38 पर सूर्यास्त होगा, प्रविष्टी भाद्रपद 20 तथा शक भाद्रपद की तिथि 13 है।

5 सितम्बर 2005 दिन सोमवार, शुक्लपक्ष। द्वितीया तिथि 6 की प्रातः 4:00 तक रहेगी। सूर्योदय 6:05 पर होकर सांय 6:37 पर सूर्यास्त होगा, प्रविष्टी भाद्रपद 21 तथा शक भाद्रपद की तिथि 14 है।

6 सितम्बर 2005 दिन मंगलवार, शुक्लपक्ष। तृतीया तिथि 7 की प्रातः 5:21 तक रहेगी। सूर्योदय 6:05 पर होकर सांय 6:36 पर सूर्यास्त होगा, प्रविष्टी भाद्रपद 22 तथा शक भाद्रपद की तिथि 15 है। श्री वराह जयन्ती।

7 सितम्बर 2005 दिन बुधवार, शुक्लपक्ष। चतुर्थी तिथि रहेगी। सूर्योदय 6:06 पर होकर सांय 6:34 पर सूर्यास्त होगा, प्रविष्टी भाद्रपद 23 तथा शक भाद्रपद की तिथि 16 है। कलंक चतुर्थी (चन्द्र दर्शन निषिद्ध)।

8 सितम्बर 2005 दिन गुरुवार, शुक्लपक्ष। चतुर्थी तिथि प्रातः 6:16 तक रहेगी। सूर्योदय 6:07 पर होकर सांय 6:33 पर सूर्यास्त होगा, प्रविष्टी भाद्रपद 24 तथा शक भाद्रपद की तिथि 17 है।

9 सितम्बर 2005 दिन शुक्रवार, शुक्लपक्ष। पंचमी तिथि प्रातः 6:40 तक रहेगी। सूर्योदय 6:07 पर होकर सांय 6:32 पर सूर्यास्त होगा, प्रविष्टी भाद्रपद 25 तथा शक भाद्रपद की तिथि 18 है। सूर्य षष्ठी।

10 सितम्बर 2005 दिन शनिवार, शुक्लपक्ष। षष्ठी तिथि प्रातः 6:29 तदन्तर 11 की प्रातः 5:42 तक सप्तमी रहेगी, अतएव् सप्तमी तिथिक्षय। सूर्योदय 6:08 पर होकर सांय 6:31 पर सूर्यास्त होगा, प्रविष्टी भाद्रपद 26 तथा शक भाद्रपद की तिथि 19 है।